न्यायमूर्ति आर.एन.मित्तल के समक्ष

हरियाणा वित्तीय निगम -याचिकाकर्ता

बनाम

डेप्रो फूड्स लिमिटेड (परिसमापन में)-प्रतिवादी

कंपनी याचिका संख्या 35/1981

3 दिसंबर 1981

कंपनी अधिनियम (1/1956)-धारा 125-राज्य वित्तीय निगम अधिनियम (1951 का एलएक्सएच1)- धारा 31(1), 32(10) और 46 किसी कंपनी के समापन के लिए कार्यवाही शुरू की गई- वित्तीय निगम द्वारा आवेदन के तहत ऐसी कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान कंपनी से लिए गए ऋण की वसूली के लिए धारा 31(1) - धारा 125 के तहत पंजीकृत न होने वाली कंपनी की संपत्ति पर बनाया गया शुल्क - वित्तीय निगम - चाहे एक तरजीही लेनदार हो - आरोप और निर्धारित विवरण दस्तावेज़ समय के भीतर रजिस्ट्रार के पास दाखिल किया गया - हालाँकि आरोप रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत नहीं किया गया - धारा 125 के प्रावधान - क्या अनुपालन माना जाता है - धारा 125 के प्रावधान - क्या वित्तीय निगम अधिनियम धारा 46 की धारा 32 (10) के साथ विरोधाभास में है - वित्तीय निगम अधिनियम का बी-चाहे आकर्षित हो।

यह अभिनिर्णीत किया गया कि यदि राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 31 की उप-धारा (1) के तहत आवेदन दाखिल करने से पहले किसी कंपनी के संबंध में परिसमापन की कार्यवाही शुरू की गई है, तो वित्तीय निगम को अन्य लेनदारों पर कोई प्राथमिकता नहीं होगी जब तक ऐसी प्राथमिकता किसी अन्य कानून द्वारा प्रदान नहीं की जाती है।

अधिनियम की धारा 32 की उपधारा (10) में 'किसी अन्य कानून द्वारा प्रदत्त नहीं' शब्द स्पष्ट रूप से बताते हैं कि यदि, किसी अन्य कानून के अनुसार, अन्य लेनदारों पर वित्तीय निगम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अंततः उसे भी वैसा ही दिया जाना चाहिए। यह एक स्थापित कानून है कि एक प्रभारी को अन्य लेनदारों पर प्राथमिकता मिलती है। हालाँकि, कंपनी अधिनियम की धारा 125 की उपधारा (1) द्वारा किसी कंपनी के मामले में इस संबंध में एक अपवाद बनाया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि एक परिसमापक के खिलाफ कोई आरोप तब तक शून्य है जब तक कि आरोप और इसे बनाने वाले उपकरण का विवरण न दिया जाए या इसकी प्रतिलिपि आरोप के सृजन के तीस दिनों के भीतर पंजीकरण के लिए रजिस्ट्रार के पास दाखिल की जाती है। सभी सुरक्षित लेनदारों के लिए, कंपनी अधिनियम की धारा 125 का अनुपालन आवश्यक है और यदि उन्होंने उक्त धारा के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया है, तो उन्हें कंपनी के सुरक्षित लेनदारों के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, धारा 32 (10) के मद्देनजर, वित्तीय निगम डीएपी को कंपनी के अन्य लेनदारों पर वरीयता मिलती है यदि उसने कंपनी अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों का अनुपालन किया है और अन्यथा नहीं। उपरोक्त प्रावधानों से यह भी स्पष्ट है कि धारा 32(10) कंपनी अधिनियम की धारा 125 को बचाती है, यदि कंपनी के परिसमापन की कार्यवाही अधिनियम की धारा 31(1) के तहत आवेदन दाखिल करने से पहले शुरू हो गई है।

(पैरा 6 एवं 9)

यह अभिनिर्णीत किया गया कि कंपनी अधिनियम की धारा 125(1) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उपकरण के साथ शुल्क का विवरण दाखिल करना या आरोप सृजन की तारीख के बाद तीस दिनों के भीतर उसकी एक प्रति आवश्यक है और रजिस्ट्रार के पास आरोप का गैर-पंजीकरण आवश्यक है। कारण यह है कि आरोप का पंजीकरण रजिस्ट्रार के अधिकार क्षेत्र में है और यदि वह ऐसा करने में देरी करता है, तो प्रभारी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। रजिस्ट्रार को यह भी शक्ति दी गई है कि यदि वह चार्ज धारक को उपरोक्त अवधि की समाप्ति के बाद सात दिनों के भीतर विवरण आदि जमा करने की अनुमति दे सकता है, यदि वह संतुष्ट है कि वह निर्धारित अवधि के भीतर पर्याप्त कारण के लिए इसे दाखिल नहीं कर सका। विवरण आदि दाखिल होने के बाद आरोप दर्ज करने की जिम्मेदारी रजिस्ट्रार पर आ जाती है। इस प्रकार चार्ज धारक रजिस्ट्रार के पास चार्ज आदि का विवरण दाखिल करते ही अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाता है।

यह अभिनिर्णीत किया गया कि वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 46-बी अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करती है कि अधिनियम के प्रावधान उस समय लागू किसी भी अन्य कानून में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद प्रभावी होंगे। यह धारा उन मामलों में लागू होगी जहां किसी अन्य अधिनियम के प्रावधान वित्तीय निगम अधिनियम के प्रावधानों के साथ टकराव में हैं। यदि बाद वाला अधिनियम किसी अन्य अधिनियम के प्रावधानों को अपनाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह प्रावधान धारा 46-बी से प्रभावित होगा। इस प्रकार, यह नहीं

कहा जा सकता है कि कंपनी अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान वित्तीय निगम अधिनियम की धारा 32(10) के साथ टकराव में हैं और इसलिए, बाद की धारा 46-बी आकर्षित नहीं होती है।

(पैरा 9)

कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 446 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित कंपनी (न्यायालय) नियम 1959 के नियम 9 के तहत आवेदन प्रार्थना करते हुए कि:-

(i) वादी निगम को उक्त मुकदमे में कंपनी के आधिकारिक परिसमापक को प्रतिवादी के रूप में शामिल करने के लिए अदालत में जाने का निर्देश दिया जा सकता है।

(ii) मुकदमों की सूचना औपचारिक रूप से आधिकारिक परिसमापक को दी जा सकती है और सभी संलग्नकों के साथ वादों की प्रतियां, जिस पर मुकदमे आधारित हैं, उन्हें आपूर्ति करने का आदेश दिया जा सकता है;

(iii) मुकदमों को फिर से खोला जा सकता है ताकि आधिकारिक परिसमापक को यह प्रस्तुत करने में सक्षम बनाया जा सके कि क्या वादी निगम को एक सुरक्षित लेनदार के रूप में माना जाना चाहिए और यदि हां, तो संपत्तियों की बिक्री के लिए वादी के दावे से पहले किस हद तक कंपनी का मनोरंजन किया जाता है.

के एल कपूर, याचिकाकर्ता के वकील।

कृष्ण कुमार, प्रतिवादी के लिए उप आधिकारिक परिसमापक।

निर्णय

राजेंद्र नाथ मित्तल, न्यायमूर्ति

(1) यह निर्णय 1981 के सीपी संख्या 34 और 35 का निपटान करेगा जिसमें कानून और तथ्य के समान प्रश्न शामिल हैं। फैसले में तथ्य सी पी क्रमांक 35/ 1981 से दिये जा रहे हैं।

(2) याचिकाकर्ता एक निगम है और इसके व्यवसाय में चल और अचल संपत्तियों की सुरक्षा पर औद्योगिक चिंताओं को ऋण देना शामिल है। प्रतिवादी औद्योगिक संस्था खाद्य प्रसंस्करण का व्यवसाय कर रही थी। प्रतिवादी के आवेदन पर, याचिकाकर्ता ने रुपये के तीन ऋण दिए। 12 लाख (ऋण खाता संख्या I), रु. 4.5 लाख (ऋण खाता संख्या II) और रु. सम तिथियों के पंजीकृत बंधक-विलेखों के आधार पर, क्रमशः 9 सितंबर, 1971, 9 मार्च, 1973, और 12 नवंबर, 1974 को 3 लाख (ऋण खाता संख्या III)। यह राशि प्रतिवादी द्वारा उल्लिखित ब्याज के साथ किस्तों में चुकानी थी। यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी ने ऋण खाता संख्या I और II में मूलधन और ब्याज की किश्तों के भुगतान में चूक की, और ऋण खाता संख्या III में मूलधन या ब्याज की कोई भी राशि का भुगतान नहीं किया। इसके द्वारा की गई चूक के कारण, सभी तीन ऋण वापस ले लिए गए और याचिकाकर्ता द्वारा 29 जुलाई, 1976 को नोटिस के माध्यम से 15 अगस्त, 1976 तक देय 23,62,232 रुपये की राशि चुकाने के लिए कहा गया। लेकिन इसने कोई

भुगतान नहीं किया। आरोप है कि आवेदन की तिथि पर ऋण खाता संख्या I में 1 सितंबर, 1978 से 9.25 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से 17,37,016.24 रुपये पर अतिरिक्त ब्याज के साथ 30,07,621.82 रुपये की राशि देय थी। ऋण खाता क्रमांक II में 1 सितम्बर 1978 से 7,98,578.55 रूपये पर 10.25 प्रतिशत वार्षिक दर से तथा 4,72,027.07 रूपये पर 1 मई 1978 से 13.5 रूपये प्रति वर्ष की दर से ऋण खाता संख्या 3 में जमा करें। आकस्मिक और विविध खर्चों के साथ, जिन्हें बंधक-कार्यों की शर्तों के अनुसार प्रतिवादी के ऋण खाते से डेबिट किया जा सकता है। नतीजतन, याचिकाकर्ता ने राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (बाद में अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 31 के तहत एक आवेदन दायर किया, उपरोक्त रकम की वसूली के लिए और अचल संपत्ति की बिक्री के लिए, वादी भूमि मशीनरी, जैसा कि विस्तृत है 18 सितंबर, 1978 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सोनीपत की अदालत में वादपत्र के साथ अनुबंध 'ए' संलग्न किया गया।

(3) आवेदन का उत्तरदाताओं द्वारा विरोध किया गया था, जिन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ दलील दी थी कि याचिका पर विधिवत अधिकृत व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर और सत्यापन नहीं किया गया था, कि बंधक कार्यों को प्रतिवादी द्वारा अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती और दबाव के तहत निष्पादित किया गया था और इसके प्रावधान अधिनियम सार्वजनिक नीति के विरुद्ध थे। पार्टियों की दलीलों पर, विभिन्न मुद्दे तय किए गए लेकिन उन्हें दोबारा प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि आधिकारिक परिसमापक ने उनमें से किसी पर भी दबाव नहीं डाला है।

(4) प्रतिवादी-कंपनी को बंद करने के लिए सीपी संख्या 234/1977 इस न्यायालय में दायर किया गया था। उस याचिका के मद्देनजर, वर्तमान याचिकाएं 26 फरवरी, 1981 के आदेश के तहत

इस न्यायालय में स्थानांतरित कर दी गईं। सीपी संख्या 234/1977 में, यह इंगित करना प्रासंगिक है कि कंपनी को 21 अगस्त, 1980 के आदेश द्वारा बंद करने का आदेश दिया गया था। नतीजतन, आधिकारिक परिसमापक वर्तमान याचिकाओं का बचाव कर रहा है।

(5) आधिकारिक परिसमापक द्वारा उठाया गया पहला प्रश्न यह है कि, जहां किसी कंपनी के संबंध में परिसमापन की कार्यवाही अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (1) के तहत आवेदन करने से पहले शुरू हो गई है, यदि किसी वित्तीय निगम का प्रभार कंपनी अधिनियम की धारा 125 के तहत पंजीकृत नहीं है तो क्या उसे कंपनी के लेनदारों पर कोई प्राथमिकता है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने जोरदार आग्रह किया है कि भले ही आरोप कंपनी अधिनियम की धारा 125 के तहत पंजीकृत नहीं है, फिर भी निगम को ऐसी स्थिति में अन्य लेनदारों पर प्राथमिकता मिलती है।

(6) मैंने विद्वान वकील के तर्क पर उचित विचार किया है लेकिन इसे स्वीकार करने में असमर्थता के लिए मुझे खेद है। अधिनियम की धारा 32 की उपधारा (10) इस मामले से संबंधित है और यह इस प्रकार है: -

"जहां किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के संबंध में परिसमापन की कार्यवाही धारा 31 की उपधारा (1) के तहत आवेदन करने से पहले शुरू हो गई है, इस धारा में किसी भी बात को वित्तीय निगम को औद्योगिक चिंता के अन्य लेनदारों पर कोई प्राथमिकता देने के रूप में नहीं माना जाएगा जो इसे किसी अन्य कानून द्वारा प्रदान नहीं किया गया है।

उप-धारा को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि यदि अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (1) के तहत आवेदन दाखिल करने से पहले, किसी कंपनी के संबंध में परिसमापन की कार्यवाही शुरू की गई है, वित्तीय निगम को कंपनी के अन्य लेनदारों पर कोई प्राथमिकता नहीं होगी जब तक कि ऐसी प्राथमिकता किसी अन्य कानून द्वारा प्रदान नहीं की जाती है। उपरोक्त अनुभाग में 'किसी अन्य कानून द्वारा इस पर प्रदत्त नहीं' शब्द महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द स्पष्ट रूप से बताते हैं कि यदि किसी अन्य कानून के अनुसार, वित्तीय निगम को अन्य लेनदारों पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए, तो उस स्थिति में भी उसे वही दी जानी चाहिए। यह एक स्थापित कानून है कि एक प्रभारी-धारक को अन्य लेनदारों पर प्राथमिकता होती है। हालाँकि, कंपनी अधिनियम की धारा 125 की उप-धारा (1) द्वारा कंपनी के मामले में एक अपवाद बनाया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि एक परिसमापक के खिलाफ कोई आरोप तब तक शून्य है जब तक कि आरोप और साधन का विवरण न दिया जाए। इसे बनाने वाले या इसकी प्रति को चार्ज के निर्माण के तीस दिनों के भीतर पंजीकरण के लिए रजिस्ट्रार के पास दाखिल किया जाता है।

(7) अब, यह देखा जाना चाहिए कि क्या शुल्क की वैधता रजिस्ट्रार द्वारा शुल्क के वास्तविक पंजीकरण पर निर्भर करती है। प्रश्न का निर्धारण करने के लिए कंपनी अधिनियम की धारा 125(1) को पढ़ना फायदेमंद है, जो इस प्रकार है: -

"125 (1) इस भाग के प्रावधानों के अधीन, किसी कंपनी द्वारा 1 अप्रैल, 1914 को या उसके बाद बनाया गया प्रत्येक शुल्क और जिस पर यह धारा लागू होती है, वह कंपनी की संपत्ति पर किसी भी सुरक्षा के रूप में होगी या इसके द्वारा प्रदान किया गया उपक्रम परिसमापक और कंपनी के किसी भी लेनदार के खिलाफ शून्य होगा जब तक कि आरोप के निर्धारित विवरण, उपकरण

के साथ, यदि कोई हो, जिसके द्वारा आरोप बनाया गया हो या साक्ष्य, या उसकी एक प्रति निर्धारित तरीके से सत्यापित न हो , इसके निर्माण की तारीख के तीस दिनों के भीतर इस अधिनियम द्वारा आवश्यक तरीके से पंजीकरण के लिए रजिस्ट्रार के पास दायर किए जाते हैं। बशर्ते कि रजिस्ट्रार उपरोक्त विवरण और लिखत या प्रतिलिपि को तीस दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद अगले सात दिनों के भीतर दाखिल करने की अनुमति दे सकता है यदि कंपनी रजिस्ट्रार को संतुष्ट करती है कि उसके पास विवरण और लिखत दाखिल न करने के लिए पर्याप्त कारण हैं या उस अवधि के साथ प्रतिलिपि बनाएँ। धारा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आरोप के विवरण को आरोप के सृजन की तारीख के तीस दिनों के भीतर दस्तावेज या उसकी प्रति के साथ दाखिल करना आवश्यक है, न कि रजिस्ट्रार के पास आरोप का पंजीकरण। कारण यह है कि आरोप का पंजीकरण रजिस्ट्रार के अधिकार क्षेत्र में है और यदि वह ऐसा करने में देरी करता है, तो प्रभारी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। रजिस्ट्रार को उपरोक्त अवधि की समाप्ति के बाद सात दिनों के भीतर प्रभारी-धारक को विवरण आदि प्रस्तुत करने की अनुमति देने की भी शक्ति दी गई है, यदि वह उसे संतुष्ट करता है कि वह निर्धारित अवधि के भीतर पर्याप्त कारण के लिए इसे दाखिल नहीं कर सका। विवरण आदि दाखिल हो जाने के बाद आरोप दर्ज करने की जिम्मेदारी रजिस्ट्रार पर आ जाती है। इस प्रकार, जैसे ही चार्ज-धारक रजिस्ट्रार के पास चार्ज आदि का विवरण दाखिल करता है, वह अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाता है। उपरोक्त दृष्टिकोण में, मैं बनारस बैंक लिमिटेड बनाम बैंक ऑफ बिहार लिमिटेड और अन्य मामले में एक डिवीजन बेंच की टिप्पणियों से मजबूत हुआ हूं। जिसमें कंपनी अधिनियम, 1913 की धारा 199, जो कि कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 125 के बराबर है, की व्याख्या की गई है। खंडपीठ ने यह देखा कि आरोप से बचने वाली बात धारा 109 के तहत पंजीकरण वापस नहीं करना है, बल्कि किसी भी विवरण को भेजने की उपेक्षा करना है। शुल्क की वैधता उस तारीख पर निर्भर नहीं करती है जिसे

रजिस्ट्रार रजिस्टर में आवश्यक प्रविष्टि करने के लिए चुनता है। अनुभाग का अनुपालन किया जाता है यदि आरोप के निष्पादन से इक्कीस दिनों के भीतर आरोप के इल्म अंततः प्रस्तुत किए जाते हैं। आगे यह माना गया है कि जहां ऐसा किया गया है, वहां अधिक तथ्य यह है कि फीस के बारे में कुछ बकाया विवाद के कारण पंजीकरण को दो साल से अधिक की अवधि के लिए रोक दिया गया था, इससे सुरक्षा नष्ट नहीं होगी। इस बात पर प्रकाश डाला जा सकता है कि धारा 109 में प्रदान की गई अवधि या 21 दिन को धारा 125 में तीस दिनों तक बढ़ा दिया गया है। मैं उपरोक्त टिप्पणियों से सम्मानपूर्वक सहमत हूं।

(8) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि अधिनियम की धारा 46-बी के मद्देनजर वित्तीय निगम के प्रभार को प्राथमिकता दी जाएगी, भले ही कंपनी के संबंध में परिसमापन की कार्यवाही शुरू हो गई हो धारा 31(1) के तहत आवेदन करने से पहले और कंपनी अधिनियम की धारा 125 के तहत शुल्क का विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपने तर्क का समर्थन करने के लिए, उन्होंने केरल वित्तीय निगम त्रिवेन्द्रम बनाम सी के शिवसंकेरा पणिक्कर और अन्य का संदर्भ दिया।

(9) मैंने तर्क पर उचित विचार किया है लेकिन इसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता पर खेद है। अधिनियम की धारा 32 (10) के प्रावधान विशेष रूप से प्रदान करते हैं कि यदि धारा 31 (1) के तहत आवेदन दाखिल करने से पहले परिसमापन की कार्यवाही शुरू हो गई है। वित्तीय निगम को अन्य लेनदारों पर प्राथमिकता होगी यदि यह किसी अन्य कानून में विशेष रूप से प्रदान किया गया हो। सभी सुरक्षित लेनदारों के लिए, कंपनी अधिनियम की धारा 125 का अनुपालन आवश्यक है और यदि उन्होंने उक्त धारा के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया है, तो उन्हें कंपनी के सुरक्षित

लेनदारों के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, धारा 32(10) के मद्देनजर, वित्तीय निगम को कंपनी के अन्य लेनदारों पर वरीयता मिल सकती है यदि उसने कंपनी अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों का अनुपालन किया है, अन्यथा नहीं। उपरोक्त प्रावधानों से यह भी स्पष्ट है कि धारा 32(10) कंपनी अधिनियम की धारा 125 को बचाती है, यदि कंपनी के संबंध में परिसमापन की कार्यवाही अधिनियम की धारा 31(1) के तहत आवेदन दाखिल करने से पहले शुरू हो गई है। धारा 46-बी अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करती है कि अधिनियम के प्रावधान उस समय लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद प्रभावी होंगे। यह धारा उन मामलों में लागू होगी जहां किसी अन्य अधिनियम के प्रावधान वित्तीय निगम अधिनियम के प्रावधानों के साथ टकराव में हैं। यदि बाद वाला अधिनियम उसके किसी भी अधिनियम के प्रावधानों को अपनाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह प्रावधान धारा 46-बी से प्रभावित होगा। इसलिए, विद्वान वकील वर्तमान मामले में उस धारा से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है।

(10) केरल वित्तीय निगम का मामला (सुप्रा), अलग है। उस मामले में, राशि की वसूली के लिए अधिनियम का आदेश दिया गया था और निष्पादन की कार्यवाही चल रही थी। बाद में कंपनी के खिलाफ परिसमापन की कार्यवाही शुरू की गई। इस प्रकार, धारा 32(10) के प्रावधान लागू नहीं हुए। मेरे विचार में, उस मामले में अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

(11) उपरोक्त चर्चा से, यह उभर कर आता है कि जहां अधिनियम की धारा 31(1) के तहत आवेदन करने से पहले किसी कंपनी के खिलाफ परिसमापन की कार्यवाही शुरू हो गई है, वित्तीय निगम अन्य लेनदारों पर वरीयता का दावा कर सकता है यदि उसने आवेदन किया है निर्धारित

अवधि के भीतर पंजीकरण के लिए रजिस्ट्रार के पास इसे बनाने वाले उपकरण या इसकी प्रतिलिपि के साथ शुल्क का विवरण। रजिस्ट्रार द्वारा आरोप का वास्तविक पंजीकरण आवश्यक नहीं है।

(12) आधिकारिक परिसमापक का अगला तर्क यह है कि कंपनी के खिलाफ परिसमापन की कार्यवाही अधिनियम की धारा 31(1) के तहत आवेदन दाखिल करने से पहले शुरू की गई थी। उनका आग्रह है कि निगम ने ऋण संख्या II और III के संबंध में कंपनी अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया है और इसलिए, उनके खिलाफ ये आरोप शून्य हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने स्वीकार किया कि दूसरे ऋण के संबंध में धारा 125 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया लेकिन ऋण संख्या III के संबंध में प्रपत्रों का अनुपालन नहीं किया गया।उनका कहना है, इन्हें कंपनी रजिस्ट्रार के पास विधिवत दाखिल किया गया था और आरोप के पंजीकरण के बारे में रजिस्ट्रार से कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई थी। उनके मुताबिक उस स्थिति में तीसरा लोन पंजीकृत माना जाएगा।

(13) मैंने प्रथम ऋण अर्थात 12 लाख रुपये के संबंध में विद्वान वकील के तर्क पर विधिवत विचार किया है, इसमें कोई विवाद नहीं है कि इसे पंजीकृत किया गया है। दूसरे ऋण यानी 5 लाख रुपये के संबंध में यह फिर से निर्विवाद है कि कंपनी अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है। हालांकि तीसरे लोन यानी 3 लाख रुपये को लेकर विवाद है. श्री प्रशांत कोहली, उप वरिष्ठ प्रबंधक, हरियाणा वित्तीय निगम, चंडीगढ़, पीडब्लू 2, ने कहा है कि खाता संख्या I पर ऋण कंपनी रजिस्ट्रार के साथ पंजीकृत था, लेकिन कोई अन्य शुल्क उनके पास पंजीकृत नहीं था। खंडन में आधिकारिक परिसमापक ने श्री ललित मोहन, वरिष्ठ तकनीकी सहायक, कंपनी रजिस्ट्रार कार्यालय, दिल्ली और हरियाणा को पेश किया। डीडब्ल्यू 1, जिन्होंने

वैसा ही बयान दिया जैसा श्री परशम कोहली, पीडब्ल्यू 2 ने जिरह में दिया है, उन्होंने कहा कि रजिस्ट्रार ने अपनी पुस्तकों में 3 लाख रुपये के दावे को दर्ज नहीं किया। कंपनी ने उक्त ऋण के संबंध में फॉर्म नंबर 14 दाखिल किया जो दोषपूर्ण था और इस आशय का एक पत्र कंपनी को भेजा गया था। कंपनी द्वारा दाखिल किया गया फॉर्म प्रदर्शित पी 17 है। फॉर्म पर कंपनी के प्रबंध निदेशक के हस्ताक्षर हैं। याचिकाकर्ता ने गवाह से दोष बताने वाला पत्र पेश करने को नहीं कहा। याचिकाकर्ता एक गिरवीदार होने के नाते मामले को आगे बढ़ाने और दोषों को दूर करने के लिए बाध्य था। दोषों की प्रकृति जिसके कारण आरोप पंजीकृत नहीं किया जा सका, याचिकाकर्ता द्वारा रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है। दोषों के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि वे भौतिक प्रकृति के थे या नहीं। याचिकाकर्ता के वकील ने कहा है कि खामियां औपचारिक प्रकृति की थीं और आरोप रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत होना चाहिए था। याचिकाकर्ता का यह कर्तव्य था कि वह आवेदन में रजिस्ट्रार द्वारा बताई गई खामियों को साबित करे। दोषों के अभाव में यह नहीं माना जा सकता कि वे औपचारिक प्रकृति के थे या नहीं। तथ्य यह है कि रजिस्ट्रार ने चार्ज के पंजीकरण के लिए कंपनी द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र को स्वीकार नहीं किया है। उस स्थिति में, याचिकाकर्ता को ही भुगतना पड़ता है। उपरोक्त स्थिति में, यह नहीं माना जा सकता कि कंपनी अधिनियम की धारा 125 में ऋण संख्या III के संबंध में उल्लिखित औपचारिकताएं पूरी कर ली गई हैं।

(14) उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, याचिकाकर्ता ऋण संख्या 1 के संबंध में आधिकारिक परिसमापक के खिलाफ आरोप का दावा करने का हकदार है, न कि अन्य दो ऋणों के संबंध में।

(15) अब, मैं सीपी संख्या 34/1981 का विज्ञापन करता हूं। उस मामले में याचिकाकर्ता का आरोप यह है कि प्रतिवादी के आवेदन पर, उसने 26 नवंबर, 1974 के हाइपोथिकेशन डीड में उल्लिखित

नियमों और शर्तों पर उसे 84,000 रुपये का ऋण दिया। यह राशि प्रतिवादी द्वारा उल्लिखित ब्याज के साथ किस्तों में चुकानी थी। यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी ने मूलधन और ब्याज की किस्त का भुगतान नहीं किया और परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता ने ऋण वापस ले लिया। ऐसे आकस्मिक और विविध खर्चों सहित प्रति वर्ष 10.5 प्रतिशत की दर से वसूली तक 15 मई 1979 से अतिरिक्त ब्याज के साथ 1,33,812.28 रुपये की राशि जिसे प्रतिवादी के ऋण खाते से बंधक विलेख की शर्तों के अनुसार डेबिट किया जा सकता है। नतीजतन, इसने उपरोक्त रकम की वसूली और बंधक संपत्ति की बिक्री के लिए अधिनियम की धारा 31 के तहत एक आवेदन दायर किया।

(16) इस मामले में भी प्रतिवादी की ओर से उपस्थित आधिकारिक परिसमापक का एकमात्र तर्क यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था। श्री बी.एम. भारद्वाज, सहायक प्रबंधक, हरियाणा वित्तीय निगम, पीडब्लू 1, ने कहा कि जनरेटिंग सेट (बंधक संपत्ति) पर निगम के प्रभार को कंपनी रजिस्ट्रार के साथ पंजीकृत किया जाना था। वह उस कार्यालय में गया और बंधक विलेख की एक प्रति के साथ फॉर्म नंबर 8 दाखिल किया। परिस्थिति को देखते हुए, याचिकाकर्ता के वकील ने दावा किया कि आरोप कंपनी रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत किया गया था। आधिकारिक परिसमापक ने श्री ललित मोहन, तकनीकी सहायक, कंपनी रजिस्ट्रार कार्यालय, दिल्ली और हरियाणा, डीडब्ल्यू 1 को प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि प्रतिवादी ने कंपनी अधिनियम की धारा 125 के तहत 84,000 रुपये के लिए कंपनी रजिस्ट्रार फॉर्म नंबर 8, दिनांक 26 नवंबर, 1974 के समक्ष दायर किया। कार्यालय में इसकी जांच की गई तो यह खराब पाया गया। प्रतिवादी-कंपनी को तदनुसार सूचित किया गया था। उस पत्र का रजिस्ट्रार द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया गया तथा जो खामियां बताई गयीं उन्हें भी कंपनी द्वारा दूर

नहीं किया गया। उन्होंने आगे कहा कि इसलिए अभियोग पंजीकृत नहीं किया गया। दोषों को इंगित करने वाले पत्र की प्रति प्रदर्शनी डी 1 है। इसमें कई खामियां बताई गईं। दोषों में से एक यह है कि मूल अनुबंध पर भुगतान की गई स्टाम्प ड्यूटी को उचित हस्ताक्षर के तहत कॉपी में उल्लेख किया जाना चाहिए, अनुसूची में उल्लिखित संपत्ति का पूरा विवरण कॉलम नंबर 3 में बताया जाना चाहिए और आगे संशोधन की तारीख फॉर्म के कॉलम नंबर 2 में बताई जाएगी। यह कंपनी का कर्तव्य था कि वह कॉपी में मूल हाइपोथीकेशन डीड पर भुगतान की गई स्टांप ड्यूटी का उल्लेख करती। यदि हाइपोथिकेशन डीड पर ठीक से मुहर नहीं लगी थी, तो रजिस्ट्रार उसे पंजीकृत करने से इनकार कर सकता था। दोष को औपचारिक प्रकृति का नहीं कहा जा सकता। उपरोक्त परिस्थिति को देखते हुए, रजिस्ट्रार द्वारा बताए गए अन्य दोषों से निपटना आवश्यक नहीं है। क्लर्क ने विशेष रूप से कहा था कि कंपनी को खामियों के बारे में सूचित कर दिया गया था। खामियों को दूर कराना और फिर आवेदन पत्र दाखिल करना निगम का कर्तव्य था। तदनुसार, यह नहीं कहा जा सकता कि कंपनी अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान का अनुपालन किया गया था।

(17) उपरोक्त कारणों से, याचिकाकर्ता 84,000 रुपये के ऋण के संबंध में आधिकारिक परिसमापक के खिलाफ आरोप का दावा करने का हकदार नहीं है।

(18) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने मेरे ध्यान में अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं लाया है जिसके तहत निगम को आकस्मिक और विविध खर्चों का दावा करने की अनुमति दी जा सके।

याचिका दायर करने के बाद बंधक/बंधक संपत्ति की बिक्री आय से प्रतिवादी के ऋण खाते से डेबिट किया गया। उन्होंने दलीलों से पहले यह कहते हुए एक आवेदन भी दाखिल नहीं किया कि प्रतिवादी के खाते से आकस्मिक और विविध खर्चों के कारण कितनी राशि डेबिट की गई थी। इस स्थिति में, याचिकाकर्ता को बंधक/बंधक संपत्ति की बिक्री आय से आकस्मिक और विविध खर्चों का दावा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ता आकस्मिक आरोपों के संबंध में उचित कार्यवाही कर सकता है।

(19) इसलिए, मैं लागत सहित याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार करता हूं और मानता हूं कि याचिकाकर्ता निम्नलिखित राहत का हकदार है:-

(1) सी पी क्रमांक 35/1981 में

(ए) ऋण खाता संख्या I में 1 सितंबर, 1978 से 17,37,016.24 रुपये पर 9.25 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज के साथ 30,07,621.86 रुपये की वसूली करना; ऋण खाता संख्या II में 7,98,578.55 रुपए पर 1 सितंबर 1978 से 10.25 प्रतिशत वार्षिक दर पर; और 4,72,027.07 रुपए पर 1 मई 1978 से वसूली तक ऋण खाता क्रमांक 3 में 13.5 प्रतिशत वार्षिक दर से।

(बी) 17,37,016.24 रुपये की राशि की वसूली के लिए ऋण संख्या I और संपत्ति की बिक्री, बंधक की विषय-वस्तु के संबंध में सुरक्षित ऋणदाता के रूप में रैंक करना और उस पर 1 सितंबर, 1978 से 9.25 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से भविष्य में ब्याज।

(सी) ऋण संख्या II और III के संबंध में एक साधारण ऋणदाता के रूप में रैंक करना।

(2) सी पी क्रमांक 34/1981 में-

(ए) 15 मई, 1979 से वसूली तक 10.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज के साथ 1,33,812.28 रुपये की वसूली करना।

(3) ऋण के संबंध में एक साधारण ऋणदाता के रूप में रैंक करना।

<u>अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अँग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।</u>

Checked By:

Karandeep

Trainee Judicial Officer

Chandigarh Judicial Academy,

Chandigarh